LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 13: क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

3/3 (श्लोक 16-34), शनिवार, 12 जुलाई 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/FbL1pgaVfY8

ज्ञान चक्षु खोल कर आत्मसाक्षात्कार, फिर परमात्मा को जान

भारतीय सनातन परम्परा का पालन करते हुए सुमधुर प्रार्थना, शिरोमणि भक्त हनुमान जी की स्तुति - हनुमान चालीसा पाठ, दीप-प्रज्वलन, श्रीकृष्ण वन्दन और गुरु वन्दना के साथ आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ।

अत्यन्त ही हर्ष का विषय है कि श्रीमद्भगवद्गीता का विवेचन सुनने हेतु हम नित जुड़ जाते हैं। ज्ञात नहीं कि हमारे कौन से जन्म के पुण्य फल से ये अद्भुत पल हमें प्राप्त होते हैं। हमारे इस जन्म के या पिछले जन्मों के अन्यथा हमारे पूर्वजों के पुण्य कर्मों के फलीभूत श्रीभगवान् की हम पर ऐसी कृपा हो गयी कि हम सब श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन में, उनके पठन-पाठन में, उनको समझने में और उनके सूत्रों को समझ अपने जीवन में अपनाने लगे हैं।

हमें यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि हम श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ने के लिए चुने गए हैं। यह विश्वास हमारे जीवन को भक्तिमय बना देता है। श्रीमद्भगवद्गीता के समान दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं। ऋषिकेश शिविर में परम पूज्य स्वामी गोविन्ददेव गिरिजी महाराज ने अनेक बार कहा कि ऐसा कहा जाता है कि वेदों का सार उपनिषद है और उपनिषदों का सार श्रीमद्भगवद्गीता है। वेद भगवान् के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता श्रीभगवान् की साक्षात् वाणी है जो उनके मुखारविन्द से प्रकट हुई। इसी कारण हज़ारों वर्षों से उनके सात सौ श्लोकों का दुहन, चिन्तन, मन्थन कितने ही आचार्य, महापुरुष एवं चिन्तक करते रहते हैं और नित नवीन अर्थ उसमें से खोज निकालते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता का यह तेरहवाँ अध्याय समझने में थोड़ा क्लिष्ट प्रतीत होता है, अतः आवश्यकता है कि इसे अत्यन्त सजग रहकर समझा जाये।

13.16

अविभक्तं(ञ्) च भूतेषु, विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं(ङ्), ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥13.16॥

वे (परमात्मा) (स्वयं) विभागरहित होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियों में विभक्त की तरह स्थित हैं और (वे) जानने योग्य (परमात्मा ही) सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले तथा उनका भरण-पोषण करनेवाले और संहार करनेवाले हैं।

विवेचन- गत सप्ताह महाकाश, मठाकाश और घटाकाश के उदाहरण का चिन्तन किया गया था।

महाकाश अर्थात् हम जिस घर में बैठे हैं उसके बाहर जो आकाश मण्डल दिखता है। मेरे घर के भीतर का जो आकाश है, उसे मठाकाश मान लेते हैं और गिलास के अन्दर का आकाश घटाकाश है।

आकाश जो मेरे घर के बाहर है और घर के अन्दर है या मेरे कमरे के अन्दर का है, वह अलग-अलग है या एक ही है? सूक्ष्म चिन्तन के पश्चात् ध्यान में आएगा कि एक ही है। हमारे घर के बाहर और भीतर का आकाश एक ही है। भिन्न न होने पर भी आकाश विभिन्न प्रतीत होता है क्योंकि उसका तापमान तीनों स्थानों पर भिन्न है। विभाग रहित आकाश एक होने पर भी अलग-अलग प्रतीत होता है क्योंकि उसकी प्रवृत्ति भिन्न हो जाती है।

एक अन्य उदाहरण से इस तथ्य को और गम्भीरता से जाँचते हैं। हमारे हाथ में जो मोबाइल है, उसके भीतर आकाश है कि वह आकाश में है? वास्तविकता में मोबाइल के भीतर भी आकाश है और उसके बाहर भी आकाश है क्योंकि आकाश तत्त्व तो सर्व व्यापी है। आकाश तत्त्व अति सूक्ष्म होने के कारण व्यापक है।

इसी प्रकार हमारा मन सूक्ष्म है। उसकी सूक्ष्मता के कारण यह ज्ञात करना कि वह हमारे शरीर में कहाँ है, असम्भव है। वह तो शरीर में सर्व व्यापी है। ठीक उसी प्रकार जैसे, बिजली के तार में बिजली कहाँ है का अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि विद्युत् भी अति सूक्ष्म और सर्व व्यापक है।

श्रीभगवान् समझाते हैं कि अविभक्त होते हुए भी चराचर भूत प्राणियों में वे भिन्न प्रतीत होते हैं। हमें मनुष्य, पशु-पक्षी, पहाड़, नदी इत्यादि भिन्न प्रतीत होते हैं परन्तु उनमें विद्यमान परमात्मा एक ही हैं।

समस्त भूतों का धारण- पोषण करने वाला **विष्णु** रूप, सबको ग्रास कर लेने वाला रूद्र **ग्रसिष्णु** रूप और ब्रह्म रूप से सृष्टि को उत्पन्न करने वाला **प्रभविष्णु** रूप एक ही परमात्मा के भिन्न रूप हैं।

अंग्रेज़ी भाषा में **GOD** शब्द का विभाजन इस प्रकार है - जेनेरेटर (generator), ऑपरेटर (operator), डिस्ट्रॉयर (destroyer) अतः ये श्रीभगवान् के तीन भिन्न कार्य क्षेत्र हैं। एक ही परमात्मा हैं जो **ब्रह्म रूप** में सृष्टि का निर्माण करते हैं, **विष्णु रूप** में सृष्टि का पालन करते हैं और वही परमात्मा **रूद्र रूप** में इस सृष्टि का संहार भी करते हैं।
एक स्त्री भी माँ, बहन, बेटी अथवा पत्नी के रूपों को परिस्थिति के अनुसार धारण कर लेती है। मूल में अविभक्त होने पर भी वह विभक्त होती है। वह एक ही रचना कहीं पर माँ है, कहीं बेटी है और कहीं पत्नी है।

इन उदाहरणों से तत्त्व का ज्ञान हो जाता है।

13.17

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः(स्), तमसः(फ्) परमुच्यते।
ज्ञानं(ञ्) ज्ञेयं(ञ्) ज्ञानगम्यं (म्), हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥13.17॥

वे (परमात्मा) सम्पूर्ण ज्योतियों के भी ज्योति (और) अज्ञान से अत्यन्त परे कहे गये हैं। (वे) ज्ञान स्वरूप, जानने योग्य, ज्ञान से प्राप्त करने योग्य (और) सबके हृदय में विराजमान है।

विवेचन - परमात्मा को तत्त्व से जानना आवश्यक है क्योंकि सामान्य ज्ञान से उनको नहीं समझा जा सकता।

लखनऊ में मुग़ल काल में निर्मित एक भूल-भुलैया है। वह एक विशिष्ट प्रकार की संरचना है क्योंकि उसमें प्रत्येक राह पर चार अलग दिशाओं के द्वार हैं। एक गाइड की सहायता से ही वहाँ सही मार्ग का चयन हो पाता है। वह गाइड भी हमारी सूझ-बूझ

को जाँचने के लिए इमारत के मध्य में लाकर छोड़ देता है और अपनी राह स्वयं ढूँढने के लिए उकसाता है। लोगों को लगता है कि वापसी का मार्ग सरल रहेगा परन्तु वे जो भी रास्ता अपनाते हैं वह कुछ कदम आगे बन्द हो जाता है। वहाँ से बाहर निकलने के लिए गाइड को दोबारा बुलाना पड़ता है। गाइड सुगमता से उन सबको वापिस ले आता है। गाइड उस संरचना का तत्त्वज्ञानी हो चुका है, उसे हर मार्ग का ज्ञान है और वह पर्यटकों को ऊपर-नीचे, दायें-बाएँ घुमाकर बाहर ले आता है। सङ्क्षेप में, बिना गाइड के भूल भुलैया से कम समय में और सुगमता से निकलना असम्भव है।

कबीर दास जी एक दोहे में कहते हैं -

कस्तूरी कुण्डली बसै मृग ढूँढ़ै बन माहि।
ऐसे घटी घटी ब्रह्म हैं दुनिया जाने नाँहि॥

हम ईश्वर प्राप्ति के लिए अनेकानेक प्रयास करते रहते हैं, परन्तु वे तो हमारे भीतर ही हैं।

इसी विषय पर एक और अति प्रसिद्ध भजन है -

मोको कहाँ ढूंढें बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।

कबीर दास जी से जब लोगों ने पूछा कि जब वह इतना पास है तो दिखाई क्यों नहीं देता, तब वे कहते हैं -

ज्यों तिल माहि तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ ही में है, जाग सके तो जाग।

जिस प्रकार तिल के दाने में, सरसों के दाने में तेल होता है पर उसे एक विधि से ही प्राप्त किया जा सकता है। दूध में दही नहीं दिखती पर दूध से दही बनता है। जिस प्रकार दो पत्थरों को रगड़ने से ही अग्नि पैदा होगी, उन्हें केवल हाथ में पकड़े रहने से नहीं। इसी प्रकार वह परमात्मा भी हमारे भीतर है, जो सामान्य रूप से दिखता नहीं पर सही विधि से यदि उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करें तो हम अवश्य सफल होते हैं। ईश्वर की साधना से ही हम उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।

13.18

इति क्षेत्रं(न्) तथा ज्ञानं(ञ्), ज्ञेयं(ञ्) चोक्तं(म्) समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय, मद्भावायोपपद्यते॥13.18॥

इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और ज्ञेय को संक्षेप से कहा गया है। मेरा भक्त इसको तत्त्व से जानकर मेरे भाव को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् ने पाँचवें और छठे श्लोक में क्षेत्र का वर्णन किया है, सातवें से ग्यारहवें श्लोक में ज्ञेय का वर्णन है और बारहवें से सत्रहवें श्लोक में क्षेत्रज्ञ का अर्थ सङ्क्षेप में समझा दिया है। जो साधक इन्हें समझ लेते हैं वे ईश्वर के मूल स्वरूप को जान लेते हैं।

13.19

प्रकृतिं(म्) पुरुषं(ञ्) चैव, विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥13.19॥

प्रकृति और पुरुष - दोनों को ही (तुम) अनादि समझो और विकारों को तथा गुणों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न समझो। कार्य और करण के द्वारा होने वाली क्रियाओं को उत्पन्न करने में प्रकृति हेतु कही जाती है (और) सुख-दुःखों के भोक्तापन में पुरुष हेतु कहा जाता है।

विवेचन- हमारे बाल्यकाल से ही एक पहेली को हम बूझते आये हैं, पहले मुर्गी आयी कि अण्डा? हम सब इस प्रश्न का उत्तर खोजना चाहते हैं पर समझ में नहीं आता। श्रीभगवान् कहते हैं कि दोनों ही अनादिकाल से विद्यमान हैं। हम अपनी सङ्कीर्णता से

समझते हैं कि हम जन्मे और मृत हुए। अतः ऐसा ही सृष्टि में होता होगा परन्तु श्रीभगवान् समझाते हैं कि प्रकृति और पुरुष अनादिकाल से ही प्रकट हैं, केवल रूप परिवर्तन होता है। वही प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त होती है और पुनः व्यक्त से अव्यक्त हो जाती है।

पन्द्रहवें अध्याय के सातवें श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं -

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

सम्पूर्ण जीव सनातन हैं अर्थात् वे सर्वदा हैं, सिन्स फॉरएवर (since forever)। व्यक्त से अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त, अनादिकाल से यह चक्र चलता आ रहा है - उत्पत्ति, स्थिति और फिर प्रलय। इस चक्र में प्रथम और अन्तिम पड़ाव नहीं दिखता। हमारी बुद्धि अपनी लीनियर (linear) समझ से आरम्भ और अन्त खोजती है परन्तु ईश्वर का चैतन्य रूप शून्य है, जिसका न आरम्भ न अन्त।

स्वामी रामतीर्थ के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग है। वे चौदह दिन की यात्रा करके अमरीका पहुँचे। उनके पास कोई सामान नहीं था, उन्हें कहाँ जाना है, इसका भी उनको कुछ पता नहीं था। वे शान्ति से जहाज के डेक पर बैठे हुए थे। उस जहाज़ के कप्तान, उनसे बहुत प्रभावित थे। वे उनसे पूछने लगे, "कोई आपको लेने आ रहा है?" स्वामीजी ने स्वीकृति में सिर हिलाया और कहा, "क्या आप मुझे अपने घर पर आमन्त्रित नहीं करना चाहेंगे?" कप्तान ने कहा, "यह मेरे सौभाग्य की बात होगी" और तुरन्त उन्हें अपने साथ चलने को कहा। कप्तान ने उनके लिए शाकाहारी भोजन की व्यवस्था की। दोनों में बातें चल ही रही थीं कि कप्तान का पुत्र जो आठ-नौ वर्ष का था, उनके पास आया और बोला, "पिताजी, मुझे गणित का एक प्रश्न पूछना है, क्या आप मुझे उसका उत्तर देंगें?" कप्तान ने कहा, "मैं अवश्य तुम्हारी सहायता करना चाहूँगा किन्तु मेरे साथ भारत से एक गणित के प्रोफेसर आए हैं, तुम उन्हीं से प्रश्न करो।" उन्होंने स्वामी रामतीर्थ जी से पूछा तो उन्होंने कहा अवश्य उत्तर दूँगा। बालक ने प्रश्न किया कि सरल रेखा क्या होती है? स्वामी रामतीर्थ ने कहा, "तुम्हें वह उत्तर बताऊँ जिससे तुम परीक्षा में पास हो जाओगे या पूरी बात बताऊँ?"

बालक को वह बात समझ नहीं आई, किन्तु उसके पिता आश्चर्य से बोले, "इसका क्या मतलब है?" स्वामी रामतीर्थ बोले, "स्कूल में अधूरी बात बताते हैं, परन्तु इसे विस्तार से समझना होगा। स्कूल की परीक्षा में लिखना है तो यही लिखेंगे कि किन्ही दो बिन्दुओं को मिलाएँगे तो वह सरल रेखा बनेगी।" कप्तान बोले कि यही तो सही उत्तर है। रामतीर्थ बोले कि यह दिखता सही है लेकिन सही नहीं है।

कप्तान ने पूछा - 'कैसे?" स्वामीजी ने उनसे पूछा, "आप जो दो बिन्दु लेंगे, उसका आधार क्या रखेंगे।" कैप्टन ने उत्तर में कहा, "मैं इस मेज को रखूँगा।" रामतीर्थ बोले, "इस मेज का आधार क्या है?" कैप्टन ने कहा, "भूमि है।" रामतीर्थ बोले, "अगर भूमि पर हम इस रेखा को बढ़ाते जाएँ तो बहुत लम्बी होने पर यह रेखा सीधी रहेगी या गोल हो जाएगी क्योंकि भूमि तो गोल है। यदि अन्तरिक्ष से जाकर हम इसे देखेंगे तो वह गोल दिखाई देगी। हमें वह रेखा सीधी दिखती है क्योंकि हम उसे छोटी मात्रा में देखते हैं। कैप्टन ने थोड़े तर्क किये, फिर उसने अपने एक मित्र को फोन किया जो कि न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर थे। कैप्टन ने उनसे कहा, "भारत से एक सन्त आए हैं जो गणित के प्रोफेसर हैं। वे कहते हैं कि हम यहाँ जो गणित पढ़ते हैं वह गलत है। आप यहाँ आ जाइए।" तो वे प्रोफेसर रात को ही उनके घर पहुँच गए। दस मिनट बाद वे भी तर्कहीन हो गए। उन्होंने स्टेट लेवल के गणितज्ञ को बुलाया। वे भी उत्तर नहीं दे पाए। अमेरिका के गणित की कमेटी भी स्वामी जी के तर्क का कोई जवाब नहीं दे पाई। उन्होंने मान लिया कि वास्तव में जो रामतीर्थ जी कह रहे हैं वह सही है। यह कहने के बाद रामतीर्थ जी ने सिद्ध किया कि संसार में सब शून्य ही है। शून्य में ही यह सारा ब्रह्माण्ड है। उन्होंने अगले चौदह दिन तक अमेरिका में शून्य पर अद्‌भुत व्याख्यान दिए और पन्द्रहवें दिन उन्होंने अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट (President Roosevelt) के साथ डिनर किया। इससे हममें भारत के महात्माओं, भारत के अध्यात्म और भारत की संस्कृति के प्रति पकड़ स्पष्ट होती है।

विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृतिसम्भवान् - प्रकृति के गुण-दोष भी अनादिकाल से विद्यमान हैं। सत्त्व, रजस, तमस, क्रोध, लालसा आदि मनुष्य के स्वभाव में हर काल में ही रहे हैं। हमें ऐसा लगता है कि हम ने प्रगति की है परन्तु यह बदलाव तो केवल भौतिक साधनों में हुआ है। वर्तमान में इन्टरनेट, मोबाइल आदि सुख-सुविधाएँ जान पड़ती हैं, परन्तु मनुष्य का जो मूल स्वरूप लाखों वर्ष पहले था आज भी वही है। उन्हीं वृत्तियों को धारण किये हुए है। अच्छे, बुरे लोग हर काल में रहते हैं, दुर्योधन और

राम हर काल में आते हैं। सतयुग में भी हिरणकश्यप जैसे विधर्मी थे और वर्तमान में भी ओसामा बिन लादेन जैसे राक्षस हुए । लाखों वर्ष पूर्व की वृत्तियाँ ज्यों की त्यों हैं। मनुष्य के सोच विचार में कोई परिवर्तन नहीं आया। सुख दुःख, राग- द्वेष, काम क्रोध, लोभ, आलस्य, मद, मत्सर, ये सभी विकार अनादिकाल से ही मनुष्य से जुड़े हुए हैं और हमारी प्रकृत्ति का अभिन्न अङ्ग हैं। उसी प्रकार वे छब्बीस दैवीय गुण भी सदैव से ही विद्यमान हैं। सभी कालों में ये सभी गुण दोष अनादिकाल से ही विद्यमान हैं। अतः श्रीभगवान् कहते हैं कि इन बातों को जान इनका सदुपयोग करना चाहिए। कामना तो मन में रहेगी पर यदि भोगों को छोड़कर ईश्वर की स्तुति करनी आरम्भ कर दें तो जीवन परिवर्तित हो जायेगा। सङ्ग्रह की वृत्ति प्रबल रहेगी, परन्तु धन के सङ्ग्रह को त्याग जप का सङ्ग्रह कर लिया तो क्या अप्रतिम परिवर्तन आ जायेगा, मात्र रजोगुण को सत्त्व में परिवर्तित करना है। तीन घण्टे फ़िल्म के स्थान पर गीता का पारायण किया जा सकता है। क्रोध का सदुपयोग स्वयं को दण्ड देने में करें न कि दूसरे को, तो क्रोध भी उपकारी हो जायेगा। विकारों को आभूषण बनाया जा सकता है, केवल दृष्टि को बदलना है।

परमात्मा ने लोभ को वश में लाने के लिए सन्तोष का पाठ पढ़ाया, कामना के लिए त्याग, अहङ्कार के लिए विनम्रता और मोह के स्थान पर वैराग्य की सीख दी। रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण को उजागर करना होता है, यह श्रीभगवान् ने चौदहवें अध्याय में बताया।

कभी ऐसा भी होता है कि सत्त्व को दबाना पड़ता है। स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन का प्रसङ्ग है, जब उनके गुरु ने उनकी ध्यान शक्ति का हरण कर लिया था। विवेकानन्द जी तीन दिन तक ध्यान की अवस्था में बैठने लगे तो उनके गुरु ठाकुर रामकृष्ण जी को उनकी चिन्ता होने लगी और उन्होंने एक दिन स्वामीजी से कहा, "इतनी लम्बी अवधि का ध्यान नहीं करो क्योंकि तुम्हारे शरीर का ध्यान मुझे रखना पड़ता है। तुम्हारे जीवन का उद्देश्य संसार को जागृत करना है।" यह कहकर उन्होंने स्वामी जी की ध्यान करने की शक्ति को ही क्षीण कर दिया। कैसा विलक्षण सामर्थ्य होता है गुरु की कृपा में।

जीसस (Jesus) के जीवन का एक प्रसङ्ग है। अपने दस शिष्यों के साथ वे गाँव-गाँव की यात्रा कर रहे थे। एक गाँव से जब गुज़र रहे थे तो एक शिष्य बोल उठा कि यह गाँव तो एक दूसरे शिष्य का है। जीसस ने उस शिष्य से अपने घर हो आने के लिए जब कहा तो उस शिष्य ने मना कर दिया। जीसस के विशेष आग्रह पर ही वह अपने घर जाने के लिए माना। कुछ दिनों बाद उस शिष्य का गाँव आया जिसने प्रथम बार अपने साथी के गाँव की सूचना दी थी। उसने जीसस से इस आकाँक्षा के साथ अपने गाँव की सूचना दी कि उसे भी अपने घर जाने का अवसर मिलेगा, परन्तु जब जीसस ने उसकी अनुमति नहीं दी तब उसके मन में कौतूहल उठा और उसने जीसस से उसका कारण पूछा। जीसस ने तब समझाया कि उस शिष्य का वैराग्य इतना बढ़ गया था कि उसको कम करने के लिए उसे घर भेजा गया परन्तु तुम्हारा राग इतना प्रबल है कि तुम्हें अपने गाँव के साथ साथ उसके गाँव का भी विचार है। तुम्हारे राग को न्यून करने की आवश्यकता है। जीसस के इस कथन से ज्ञात होता है कि गुरु कितने कल्याणकारी होते हैं। वे शिष्य को भली प्रकार से जानते हैं और सदैव उसके विकास के लिए ही निर्णय लेते हैं।

13.20

कार्यकरणकर्तृत्वे, हेतुः(फ्) प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः(स्) सुखदुःखानां(म्), भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥13.20॥

प्रकृति और पुरुष - दोनों को ही (तुम) अनादि समझो और विकारों को तथा गुणों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न समझो। कार्य और करण के द्वारा होने वाली क्रियाओं को उत्पन्न करने में प्रकृति हेतु कही जाती है (और) सुख-दुःखों के भोक्तापन में पुरुष हेतु कहा जाता है।

विवेचन- इस श्लोक का अर्थ जानने के लिए सन्त महात्मा एक चलती हुई गाड़ी का उदाहरण देते हैं। वे पूछते हैं कि जो गाड़ी सड़क पर चलती हुई दिखाई देती है, उसमें क्या चल रहा होता है? क्या ऊपर की बॉडी, या फिर नीचे के पहिये, इञ्जन या फिर उस गाड़ी का गियर? उसके उत्तर में वे समझाते हैं कि पहिए के चलने का कारण गियर बॉक्स होता है। गियर बॉक्स के चलने का कारण इञ्जन होता है और इन सबके कारण हमें पूरी कार चलती हुई दिखती है। किसके कारण से क्या चलता हुआ दिखता है? ये कार्य कारण सिद्धान्त होते हैं।

शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहम् और जीवात्मा - यह चक्र है।
शरीर से ऊपर मन, मन से ऊपर बुद्धि, बुद्धि से ऊपर चित्त, चित्त से ऊपर अहङ्कार और अहङ्कार से ऊपर जीवात्मा। ये छः परते हैं। स्थूल और सूक्ष्म शरीर के जुड़ाव के कारण ये सब एक दूसरे से बँधे हैं। आत्मतत्त्व पूर्णतः निर्लेप है, लेकिन श्रीभगवान् ने कहा कि मन इन्द्रियों सहित इस जीवात्मा को बाँध लेता है। कोई तत्त्वज्ञानी महात्मा या पूज्य स्वामी जी जैसे कोई श्रेष्ठ महान पुरुष ही यह जान पाते हैं कि मैं आत्म तत्त्व हूँ, शरीर नहीं, अतः शरीर के सुख-दुःख का अनुभव भी उन्हें नहीं होता।

स्वामी रामचन्द्र की कथा से आप भली-भाँति परिचित होंगें। उन्हें भूख लगती तो बोलते अपने राम को भूख लगी है। उन्हें नींद आती तो बोलते अपने राम को नींद आ रही है। कहीं जाना होता तो बोलते अपने राम को जाना है। वे कभी ऐसा बोलते ही नहीं थे कि उन्हें किसी आलम्बन की आवश्यकता है। यह बोलने की बात नहीं थी, यह उनकी नित्य स्थिति थी। मुझे भूख लगी है ऐसा उनको लगता ही नहीं था। वे अपने शरीर को 'अपना राम' कहते थे। नींद आ रही है तो 'अपने राम' को नींद आ रही है, कहीं जाना है तो शरीर को जाना है। मैं न ही कहीं जाने वाला हूँ, न मैं सोने वाला हूँ और न ही मैं कुछ करने वाला हूँ, अर्थात् आत्मतत्त्व सभी अवस्थाओं से निर्लेप रहता हुआ शरीर की किसी भी क्रिया से जुड़ता नहीं है। जिसको यह ज्ञान हो गया, उसे तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया।

13.21

पुरुषः(फ्) प्रकृतिस्थो हि, भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं(ङ्) गुणसङ्गोऽस्य, सदसद्योनिजन्मसु॥13.21॥

प्रकृति में स्थित पुरुष (जीव) ही प्रकृतिजन्य गुणों का भोक्ता बनता है (और) गुणों का संग (ही) उसके ऊँच-नीच योनियों में जन्म लेने का कारण बनता है।

विवेचन- प्रकृति में स्थित पुरुष प्रकृति द्वारा उत्पन्न गुणात्मक पदार्थों को भोगता है। हमारा शरीर प्रकृति से उत्पन्न हुआ है, जितने भी सुख, भोग पदार्थ हमें दिखते हैं, वे सभी इस प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। हम यदि इन गुणों के सङ्ग से विमुक्त रहें, बुद्धि से इनका त्याग कर दें तो जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। अज्ञान के कारण और जीवात्मा को अलग न मानने के कारण जीवात्मा को भी इन कर्मों के प्रभाव से बँधकर अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेना पड़ता है।

कर्म करने वाला मैं हूँ, यह मानते ही कर्म फल का भोक्ता जीवात्मा हो जाती है। यदि हम मन में यह विचार धारण कर लें कि मैंने कोई कर्म किया नहीं, मैं तो केवल नियुक्त किया गया हूँ तो कर्म के फल से हम जुड़ेंगे नहीं। जैसे किसी नाटक में अभिनय करने वाले को जुआरी की भूमिका निभानी है। वह उस पात्र में यदि दस हज़ार रूपये हार गया तो वास्तव में वह धन राशि उससे कोई लेता नहीं। इसी प्रकार यदि हम यह समझ लें कि हम अलग-अलग रिश्तों का पालन कर रहे हैं, कभी पुत्र, कभी पिता, पत्नी अथवा माँ, या एम्प्लॉई (employee), एम्प्लॉयर (employer), खिलाड़ी, सैनिक इत्यादि और अपने कर्म का धर्म स्वरूप निर्वाह करते हुए, उस सूक्ष्म ज्ञान को मन में दृढ कर लें कि मैं कर्त्ता नहीं हूँ, केवल अपना धर्म पालन कर रहा हूँ तो उसके कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।

13.22

उपद्रष्टानुमन्ता च, भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो, देहेऽस्मिन्पुरुषः(फ्) परः॥13.22॥

यह पुरूष (शरीर के साथ सम्बन्ध रखने से) 'उपद्रष्टा', (उसके साथ मिलकर सम्मति, अनुमति देने से) 'अनुमन्ता', (अपने को उसका भरण- पोषण करने वाला मानने से) 'भर्ता', (उसके संग से सुख दुःख भोगने से) 'भोक्ता', और (अपने को उसका स्वामी मानने से) 'महेश्वर' (बन जाता है)। परन्तु (स्वरूप से यह) पुरुष 'परमात्मा' कहा जाता है। (यह) इस (देह में) रहता हुआ भी (देह से) पर (सर्वथा सम्बन्ध-रहित) ही है।

विवेचन- यह श्लोक अति महत्त्वपूर्ण है। यदि इसका अर्थ समझ में आ जाये तो बहुत सारी गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं।

श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि इस देह में स्थित आत्मा वास्तव में **परमात्मा** है। भिन्न-भिन्न प्रकार से शरीर से सम्बन्ध रखने के कारण यह प्रभावित होती रहती है। जब केवल साक्षी रूप ग्रहण करती है तो '**उपद्रष्टा**' कहलाती है। शरीर के किसी काज को सम्मति देने से '**अनुमन्ता**' हो जाती है। यदि यह भाव उत्पन्न हो जाये कि मैं तो धारण-पोषण करने वाला हूँ तो '**भर्ता**' हो जाती है। उसके सुख दुःख में भागीदार होने पर '**भोक्ता**' कहलाती है। यदि स्वयं को सबका कर्त्ता मान ले तो '**महेश्वर**' कहलाती है, अर्थात् एक ही आत्मा है जो परमात्मा स्वरूप है, परन्तु शरीर से अनेक प्रकार से जुड़ते हुए कभी उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, या महेश्वर की भूमिका में प्रकट होती है।

एक व्यावहारिक उदाहरण से इस तथ्य को सहजता से समझते हैं। किसी दुकान पर बैठने वाला व्यक्ति आयु के साथ बूढ़ा हो जाता है। उसके बच्चे बड़े होकर दुकान सम्भालते हैं। अब ये बूढ़े पिताजी केवल दुकान पर आकर बैठते हैं, कोई कामकाज नहीं करते। उन्हें दुकान में चल रहे क्रय-विक्रय से कुछ लेना देना नहीं। वे तो केवल अपना मन बहलाने हेतु दिन में समय व्यतीत करने के लिए चार-छः घण्टा आकर वहाँ पर बैठ जाते हैं। दुकान के सब कार्य तो अब बच्चे ही सम्भालते हैं।

यदि वे सब कार्य भार बच्चों पर छोड़, केवल साक्षी बन, सब गतिविधियों को, मूक बनकर निहारते हैं तो वे उपद्रष्टा हैं। फिर एक दिन कोई ग्राहक आता है और उनके बेटे के सामने प्रस्ताव रखता है कि वह यदि पचास पैसे कम लगाए तो सौ बोरी माल ले जायेंगे। इससे पहले कि पुत्र उत्तर दे, पिताजी बोल पड़े कि ग्राहक का प्रस्ताव मान लो। जैसे ही उन्होंने हस्तक्षेप किया, अब वे उपद्रष्टा से अनुमन्ता हो गए।

इतने में एक पड़ोसी आकर उनसे बातें करने लगा। वे उससे कहते हैं, "मैं तो मौज की जिन्दगी जी रहा हूँ। यह पूरी दुकान जमा कर बेटे को सम्भला दी। अब मुझे कुछ लेना-देना नहीं।" जैसे ही उन्होंने अपने ऊपर बेटे को दुकान बनाकर देने का भाव मन में बैठाया, वे बेटे का पोषण करने वाले बन गए। अब वे भर्ता हो गए।

इतने में नौकर अन्दर से चिल्लाता हुआ आता है कि, "मालिक बहुत नुकसान हो गया।" लेकिन लड़का बोलता उससे पहले पिताजी बोल पड़े, "क्या हुआ?"नौकर सूचित करता है कि अन्दर जो माल रखा था, बरसात का पानी आने से भीग कर सारा खराब हो गया। जैसे ही नौकर ने आकर खबर दी, ये बीच में कूदे। कूद कर उस नुकसान के भोक्ता बन गए।
अनुमन्ता से भर्ता बने और अब हो गए भोक्ता!

फिर एक पड़ोसी आया। उनसे वार्तालाप करते हुए कहने लगे, "चार लड़के थे, चारों को सेट कर दिया। एक को डॉक्टर बना दिया है, वह शहर में रहता है। दूसरे को दुकान सम्भला दी। तीसरे की एलआईसी में नौकरी लग गई है। वह अपना एलआईसी का काम करता है और चौथा लड़का रेलवे में लग गया है।" अब ये बन गए- **महेश्वर**। "मैंने सबको सेट कर दिया और मैं कुछ करता नहीं हूँ। मैं सबका परमात्मा हो गया, सबका मालिक हो गया, अतः मैं महेश्वर। यही जीवभाव पाँचों रूप से चलता रहता है, लेकिन एक छठी बात अभी शेष है - **परमात्मा।**

जो इन पाँचों सम्बन्धों से मुक्त हो गया। जो न उपद्रष्टा है, न अनुमन्ता है, न भर्ता है, न भोक्ता है और न ही महेश्वर है।

कोई बोले कि भैया तुमने तो अपने लड़कों को सेट कर दिया, तो ये प्रत्युत्तर में यदि कहें, "भैया मैंने कुछ नहीं किया, जो कुछ किया है, परमात्मा ने किया। मेरा कोई कर्म नहीं। मैं तो श्रीभगवान् का भजन पहले कर रहा था अब भी भजन कर रहा हूँ। जिसको जो बनना था वह बन गया।" यदि वह यह भाव रखे तो परमात्मा से जुड़ गए।

जब हम संसार के सभी कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं तो वह स्वरूप परमात्मा, शुद्ध सच्चिदानन्द का हो जाता है।

एक विख्यात शेर है -

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो भी खुदा होता
डुबोया मुझको होने से, न होता मैं तो क्या होता?

न ममः से ही **अहम् ब्रह्मास्मि, तत् त्वम् असि,** की यात्रा का प्रारम्भ होता है।

13.23

य एवं(म्) वेत्ति पुरुषं(म्), प्रकृतिं(ञ्) च गुणैः(स्) सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, न स भूयोऽभिजायते॥13.23॥

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य (अलग-अलग) जानता है, वह सब तरह का बर्ताव करता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता।

विवेचन - तत्त्व का ज्ञान होने पर उसे व्यवहार में जब उतार लिया तब मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। केवल बुद्धि के जागरण से नहीं अपितु उस बुद्धि जनित ज्ञान को जीवन में आत्मसात करना भी अनिवार्य है।

13.24

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति, केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन, कर्मयोगेन चापरे॥13.24॥

कई मनुष्य ध्यानयोग के द्वारा, कई सांख्य योग के द्वारा और कई कर्मयोग के द्वारा अपने-आप से अपने-आप में परमात्मतत्त्व का अनुभव करते हैं।

विवेचन- अपनी-अपनी वृत्ति अनुसार, ध्यानयोग द्वारा, ज्ञानयोग द्वारा अथवा कर्मयोग द्वारा मनुष्य परमात्मतत्त्व की अनुभूति करते हैं।

परिवार का पालन करने हेतु तीन ही विधि हैं - कृषि, व्यापार या नौकरी। अर्थार्जन के लिए इसके अतिरिक्त और कोई माध्यम नहीं। श्रीभगवान् कहते हैं कि उन्हें प्राप्त करने के लिए भी केवल तीन ही साधन हैं। ध्यानयोग, साङ्ख्ययोग और कर्मयोग।

श्रीभगवान् कहते हैं-

मामनुस्मर युध्य च।। 8.7 ।।

युद्ध भी करना है तो मुझ में मन लगाकर करो।

कर से कर्म करै विधि नाना, मन राखो जहाँ कृपा निधाना। |

अपने सब कर्म करते रहो लेकिन अपना हृदय श्रीभगवान् के पास रखो।

इसे उदाहरण से समझते हैं - जैसे किसी युवक-युवती का जब सम्बन्ध तय होता है या नया विवाह होता है। कुछ समय के लिए उन दोनों का मन एक दूसरे में ही लगा रहता है। युवक ऑफिस में पत्नी का विचार कर रहा होता है - घर पर वह क्या कर रही होगी? युवती घर पर बैठी काम करती है पर मन में विचार पति के ही हैं। सोचती है, वे ऑफिस में क्या कर रहे होंगे। अब इन्होंने ऑफिस का काम बन्द कर दिया होगा। अब तो उठ खड़े होंगे, स्कूटर स्टार्ट कर दी होगी, घर पर आने वाले होंगे। घर बैठे सब काम कर रही है लेकिन मन में युवक बसा हुआ है और उस युवक के मन में उसकी प्रेयसी बसी हुई है।

यदि हमारे मन में भी यही भाव जागृत हो जाये कि मैं घर का सारा काम करते हुए या ऑफिस का काम करते हुए, बच्चों का पालन करते हुए अथवा गीता पढ़ते हुए, हर पल श्रीभगवान् से मन जुड़ा रहे तो यह ध्यानयोग की प्राप्ति हुई।

हाथ कार वल, दिल यार वल।

दूसरा साङ्ख्य या ज्ञानयोग - जो सत-असत, प्रकृति-पुरुष, क्षर-अक्षर, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ जैसे शब्दों का मूल समझ गया, वह इनके

तत्त्व को समझ गया। यह है ज्ञानयोग। तीसरा कर्मयोग है, जिसमें निहित भाव रहता है। श्रीभगवान् ने जो शरीर दिया है, मैं इसको संसार की सेवा में लगाऊँ।

सर्वभूतहिते रताः। | 12.4 | |

कर्मयोग का अर्थ कई लोग कर्म मान लेते हैं। उनके अनुसार, मैं तो अपने काम में मन लगाता हूँ, यही मेरा पूजा है। यह कर्मयोग का वास्तविक अर्थ नहीं है। कर्मयोग का आरम्भ होता है जब कर्तापन का भाव और फल इच्छा की भावना नहीं रहती। ऐसी शुद्ध भावना से निहित हो जो संसार से प्राप्त शरीर को संसार की सेवा में लगाता है, वह कर्मयोगी कहलाता है।

13.25

अन्ये त्वेवमजानन्तः(श्), श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव, मृत्युं(म्) श्रुतिपरायणाः॥13.25॥

दूसरे मनुष्य इस प्रकार (ध्यानयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग, आदि साधनों को) नहीं जानते, पर दूसरों से (जीवन्मुक्त महापुरुषों से) सुनकर उपासना करते हैं, ऐसे वे सुनने के अनुसार आचरण करने वाले मनुष्य भी मृत्यु को तर जाते हैं।

विवेचन- जिस मनुष्य को ध्यानयोग, साङ्ख्ययोग, कर्मयोग इत्यादि की गूढ़ता न समझ आये, वह केवल किसी तत्त्व ज्ञानी महात्मा की शरण में रहकर उनके कथन अनुसार कर्म करते जाये और ईश्वर की उपासना करते जाये, वह भी मृत्यु रूपी संसार सागर को पार कर जाता है।

13.26

यावत्सञ्जायते किञ्चित्, सत्त्वं(म्) स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तद्विद्धि भरतर्षभ॥13.26॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! स्थावर और जंगम जितने भी प्राणी पैदा होते हैं, उनको (तुम) क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से (उत्पन्न हुए) समझो।

विवेचन- क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का जितना बड़ा विश्लेषण करते जायेंगे अथवा जितना छोटा विश्लेषण करेंगे, क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ बदलते जायेंगे। शरीर के लिये जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है तथा शरीर क्षेत्र है।

हमारे लिये हम स्वयं क्षेत्रज्ञ हैं तथा हमारे द्वारा किये गये सभी कार्य हमारा क्षेत्र है।

प्रधानमन्त्री जी के लिये सम्पूर्ण देश क्षेत्र हो गया और वे क्षेत्रज्ञ हो गये। कौन कहाँ से देख रहा है उसके अनुसार क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ परिवर्तित होते रहते हैं।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही संसार की सारी क्रियाएँ चलती हैं।

13.27

समं(म्) सर्वेषु भूतेषु, तिष्ठन्तं(म्) परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं(म्), यः(फ्) पश्यति स पश्यति ॥13.27॥

जो नष्ट होते हुए सम्पूर्ण प्राणियों में परमेश्वर को नाश रहित (और) समरूप से स्थित देखता है, वही (वास्तव में सही) देखता है।

विवेचन- श्रीभगवान् चेतन के छः गुण बताते हैं। किसको चेतन कहते हैं? कौन जड़ है?

जो इन छः बातों में ढलता है, वह चेतन होता है।

1. जिसका जन्म हो, वह चेतन ।

2. जिसका अस्तित्व हो, वह चेतन।

3. जिसकी वृद्धि होती है, वह चेतन।

4. अपने समान ही दूसरों को उत्पन्न करे, वह चेतन ।

5. जरा अर्थात् जो वृद्ध हो, वह चेतन।

6. जिसकी मृत्यु हो, वह चेतन।

अतः चैतन्य के ये छः लक्षण हैं- **जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, अपने समान जीव को उत्पन्न करना, क्षय होना तथा मृत्यु को प्राप्त करना।**

कबीर दासजी का एक सुन्दर भजन है-

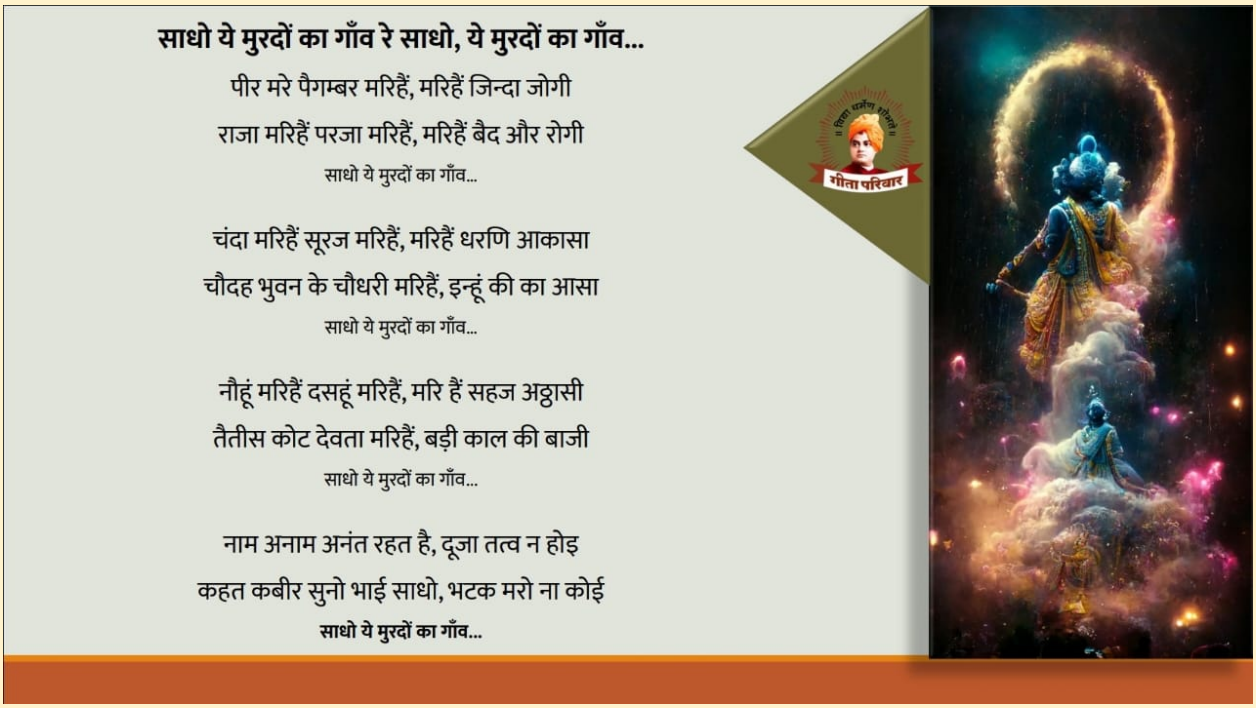

कबीर दास जी कहते हैं कि सभी को मृत्यु की प्राप्ति होगी। कोई पीर-पैगम्बर, योगी, राजा, प्रजा कोई भी आज तक अमर नहीं रहा है। कोई वैद्य अथवा रोगी भी नहीं बचा है। ये सूर्य, चन्द्रमा, धरती, आकाश ये सब समाप्त होंगे। चौदह भुवन स्वामी, स्वयं ब्रह्मा भी शान्त हो जायेंगे।
इनकी भी क्या आशा करनी है? नौवाँ, दसवाँ, अट्ठासी तथा तैंतीस कोटि देवी-देवता भी अमर नहीं हैं।

मात्र एक ही तत्त्व है जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती है- नाम। सगुण तथा निर्गुण परमात्मा जिसकी सभी लोग उपासना करते हैं, वही रहने वाला है, बाकी सब चले जायेंगे।

नौ तत्त्व- जीव, अजीव, पाप, पुण्य, आश्रय, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष- ये सभी मृत्यु को प्राप्त होंगे।

दश- अर्थात् दशावतार- ये भी मृत्यु को प्राप्त करेंगे। अट्ठासी सहस्त्र ऋषि हुये हैं, उनकी भी मृत्यु हुई।

एक बार सिकन्दर भारत आ रहा था। उसने अपनी माँ से पूछा कि मैं भारत जा रहा हूँ तो आप के लिये क्या लाऊँ? सिकन्दर की माँ ने उत्तर दिया कि भारत में संन्यासी बहुत हैं, ऐसे संन्यासी सम्पूर्ण संसार में कहीं और नहीं होते हैं। यदि कुछ लाना चाहता है मेरे लिये एक संन्यासी ले आना।

सिकन्दर ने कहा कि ठीक है, वह भारत पहुँचा। बहुत विजय प्राप्त की और लौटते समय अपने सैनिकों को आदेश दिया कि एक संन्यासी को लेकर आओ। यूनानी सैनिकों को संन्यासी के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था। उन्होंने लोगों से असली संन्यासी के गुण पूछे तथा ज्ञात किया कि असली संन्यासी हिमालय पर मिलेंगे। वे वहाँ गये। उन्हें एक संन्यासी दिखायी दिया। वे उनके पास गये तथा बोले कि हमारे राजा ने तुम्हें बुलाया है।

संन्यासी ने पूछा, "कौन राजा?"
इस पर सैनिक बोले, "सिकन्दर! सम्पूर्ण धरती का राजा है।"
संन्यासी ने कहा, "जाकर कह दो अपने राजा से कि वह मात्र धरती का राजा है किन्तु मैं इस धरती को निर्माण करने वाले राजा की तपस्या कर रहा हूँ। मैं नहीं आ सकता हूँ। यदि उसे मिलना हो तो वही आ जाये।"
सैनिक परेशान होकर वापस चले गये और सिकन्दर को सन्देश दिया कि एक असली संन्यासी मिला तो है किन्तु वह यहाँ आने को तैयार नहीं है।
सिकन्दर क्रोधित होकर सेना सहित संन्यासी के पास गया तथा उन्हें धमकाया, "तुम मुझे जानते नहीं हो?"

संन्यासी ने कहा, "नहीं, कौन हो तुम?"
सिकन्दर बोला, "मैं सिकन्दर हूँ। पूरी दुनिया का राजा।"
संन्यासी ने कहा, "मैंने कभी सुना नहीं।" सिकन्दर ने कहा, "यदि तुम मेरी अवज्ञा करोगे तो मैं तुम्हें मार दूँगा।"
संन्यासी ने उत्तर दिया, "मार दो। तुम मुझे नहीं मार सकते हो।" सिकन्दर ने पूछा, "क्या तुम अमर हो ?"
संन्यासी ने कहा, "हाँ।"
सिकन्दर ने "क्या मैं तलवार से तुम्हारा गला काटूँगा तो भी तुम मरोगे नहीं?"संन्यासी ने कहा, "शरीर मरेगा, मैं नहीं।" सिकन्दर को बहुत आश्चर्य हुआ।

अन्त में सारे तर्क करने के पश्चात् सिकन्दर को ज्ञात हो गया कि सम्पूर्ण संसार को वह जीत सकता है किन्तु संन्यासी से नहीं जीत सकता।
वह उन्हें प्रणाम करके आगे बढ़ गया। जिसने अपने शरीर से स्वयं को पृथक कर लिया, उसे कौन मार सकता है? कौन हरा सकता है? कौन धमका सकता है?

श्रीभगवान् आत्म साक्षात्कार की स्थिति बतलाते हैं।

13.28, 13.29, 13.30

समं(म्) पश्यन्हि सर्वत्र, समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं(न्), ततो याति परां(ङ्) गतिम्॥13.28॥
प्रकृत्यैव च कर्माणि, क्रियमाणानि सर्वशः।

यः (फ्) पश्यति तथात्मानम्, अकर्तारं (म्) स पश्यति॥13.29॥
यदा भूतपृथग्भावम्, एकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं (म्), ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥13.30॥

क्योंकि सब जगह समरूप से स्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला मनुष्य अपने-आप से अपनी हिंसा नहीं करता, इसलिये (वह) परमगति को प्राप्त हो जाता है।
जो सम्पूर्ण क्रियाओं को सब प्रकार से प्रकृति के द्वारा ही की जाती हुई देखता है और अपने आपको अकर्ता देखता (अनुभव करता) है, वही (यथार्थ) देखता है
जिस काल में (साधक) प्राणियों के अलग-अलग भावों को एक प्रकृति में ही स्थित देखता है और उस प्रकृति से ही (उन सबका) विस्तार (देखता है), उस काल में (वह) ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! जिस क्षण यह पुरुष भूतों अर्थात् प्राणियों के पृथक-पृथक भाव को एक ही परमात्मा में स्थित, उस परमात्मा से ही सम्पूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।"

श्रीभगवान् कहते हैं कि आत्म-साक्षात्कार की स्थिति को प्राप्त करने में अनेक वर्ष नहीं लगते हैं अपितु उसी क्षण, जिस समय यह समझ में आ गया कि भूत के जो ये पृथक-पृथक भाव हैं, वे सब एक परमात्मा में स्थित हैं और उसका विस्तार भी उसे समझ में आ जाता है, उसी क्षण वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

13.31

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्, परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय, न करोति न लिप्यते॥13.31॥

हे कुन्तीनन्दन ! यह (पुरुष स्वयं) अनादि होने से (और) गुणों से रहित होने से अविनाशी परमात्मस्वरुप ही है। यह शरीर में रहता हुआ भी न करता है (और) न लिप्त होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! अनादि होने से, निर्गुण होने से, वह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में न तो कुछ करता है और न ही किसी वस्तु में लिप्त होता है।"

श्रीभगवान् यहाँ पुनः वही बात दोहराते हैं कि शरीर में स्थित परमात्मस्वरूप न ही कुछ करता है और न ही कहीं लिप्त होता है।

13.32

यथा सर्वगतं(म्) सौक्ष्म्याद्, आकाशं(न्) नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते॥13.32॥

जैसे सब जगह व्याप्त आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होने से (कहीं भी) लिप्त नहीं होता, ऐसे ही सब जगह परिपूर्ण आत्मा (किसी भी) देह में लिप्त नहीं होता।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता वैसे ही देह में स्थित यह आत्मा निर्गुण होने के कारण देह में लिप्त नहीं होती।"

हमने आरम्भ में एक उदाहरण देखा कि मोबाइल आकाश में है या आकाश मोबाइल में है? बाद में ध्यान में आता है कि आकाश भी मोबाइल में है और मोबाइल भी आकाश में है, किन्तु जिधर-जिधर मोबाइल ले जाएँगे, इधर का आकाश उधर नहीं आता। वह आकाश मोबाइल में लिप्त नहीं होता। जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होगी वह लिप्त नहीं होगी उतनी ही प्रभाव रहित होगी।

अगर हम मोबाइल को इधर लाएँगे तो वायु मोबाइल के साथ आएगी लेकिन आकाश वहीं का वहीं रहेगा। वायु से सूक्ष्म आकाश है। जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है, वह सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। श्रीभगवान् कह रहे हैं, "आकाश ही वस्तु है और वस्तु ही आकाश में है।"

13.33

यथा प्रकाशयत्येकः(ख्), कृत्स्नं(म्) लोकमिमं(म्) रविः।
क्षेत्रं(ङ्) क्षेत्री तथा कृत्स्नं(म्), प्रकाशयति भारत॥13.33॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, ऐसे ही क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही क्षेत्रज्ञ सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

एक बात ध्यान रखने योग्य है कि एक सूर्य अपने ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर सकता है, सारे ब्रह्माण्डों को नहीं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं तो सूर्य भी कोटि-कोटि हैं। एक जीवात्मा एक शरीर को प्रकाशित कर सकती है। एक ही जीवात्मा सभी को प्रकाशित नहीं कर सकती। जब हम इसको समष्टि पूर्ण ढङ्ग से समझेंगे तो सूर्य भी अलग-अलग नहीं है और जीवात्मा भी अलग-अलग नहीं है। आपकी आत्मा, मेरी आत्मा, किसी भी पेड़, पशु-पक्षी की आत्मा अलग-अलग नहीं हैं, वे एक ही हैं। पूरे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाला वह क्षेत्रज्ञ एक ही है। वह अलग-अलग नहीं है।

13.34

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवम्, अन्तरं(ञ्) ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं(ञ्) च, ये विदुर्यान्ति ते परम्॥13.34॥

इस प्रकार जो ज्ञानरूपी नेत्रों से क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विभाग को तथा कार्य-कारण सहित प्रकृति से स्वयं को अलग जानते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को सत्कार्य-तत्कार्य सहित प्रकृति से मुक्त होने को जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों से तत्त्व सहित जानते हैं, वे महात्मा परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

पढ़ने, सुनने, बोलने से नहीं अपितु ज्ञान-नेत्रों से जो इसको जान जाते हैं। हम हमारे सामान्य कानों से जो सुन रहे हैं, सामान्य नेत्रों से जो देख रहे हैं, सामान्य बुद्धि से जो समझने का प्रयास कर रहे हैं, उससे यह बात हमारी समझ में आने वाली नहीं है। ज्ञान-नेत्रों के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त होता है। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का ज्ञान हमें ज्ञानचक्षुओं से प्राप्त करना है। संसार का मूल क्या है और उस मूल के वलय में क्या भासित होता है? श्रीभगवान् कहते हैं कि जो इसे तत्त्व से जान जाता है, वह मुझे प्राप्त हो जाता है, अर्थात् स्वयं के मूल तत्त्व को प्राप्त हो जाता है।

पुष्पिका एवम् हरिनाम कीर्तन के साथ सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- नीलिमा दीदी
प्रश्न- आपने बताया कि यह अनादि चक्र चलता ही रहता है। कलयुग के बाद फिर से क्रमशः सतयुग, त्रेता आदि युग आएँगे तो

क्या घटनाएँ भी वैसे ही दोहराई जाएँगी?
उत्तर- हमारे यहाँ अनेक रामायण हैं और कथानकों में थोड़ा-थोड़ा भेद है। हमारे सन्तों ने बताया है कि यह भेद इसलिए है क्योंकि भिन्न-भिन्न कल्पों में थोड़ा-थोड़ा कुछ बदल जाता है। सारी घटनाएँ वैसी नहीं होतीं। श्रीभगवान् के अवतार की जो लीलाएँ हैं, उनमें तो समानता होती है लेकिन हम एक जैसे नहीं होते। हम अपने कर्मों के अनुसार बदलते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता- जेठा भैया
प्रश्न- यहाँ गीता जी में श्रीभगवानुवाच जहाँ-जहाँ कहा गया है तो उससे अभिप्राय यही हुआ कि श्रीकृष्ण ही अर्जुन को ज्ञान दे रहे हैं।
उत्तर- हम जिसे इष्ट मानते हैं, श्रीभगवान् का अर्थ उनसे हुआ। जिस तरह मेरे लिए यदि मेरी श्रद्धा राम जी के लिए अधिक है तो श्रीभगवानुवाच से अभिप्राय श्रीराम उवाच हुआ। अर्जुन ने श्रीभगवान् से एक बार फिर से कहा कि आप मुझे एक बार फिर से गीता का ज्ञान दीजिए लेकिन श्रीभगवान् ने ऐसा किया नहीं और उन्होंने कहा कि उस समय मैं जिस परम ब्रह्म के अनुभाव में था, ऐसा बार-बार नहीं हो सकता, इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता एक ही बार कही गई, बार-बार नहीं, लेकिन जितने भी सम्प्रदाय हैं वे अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार धार्मिक परम्पराओं का अनुसरण करते हैं तो इसमें किसी भी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्नकर्ता- सुमन दीदी
प्रश्न- आजकल लोग पढ़े-लिखे अधिक हैं लेकिन संस्कारों का पतन होता चला जा रहा है। इसके लिए क्या उपाय कर सकते हैं?
उत्तर- इसके लिए केवल एक सरल उपाय है कि आप स्वयं से ही स्वयं में परिवर्तन करें और आपके जीवन का यह परिवर्तन दूसरों को दिखना चाहिए। आपका कर्म में अधिकार है, उसके फल में नहीं। जब हम फल में आसक्त हो जाते हैं तब हमें ऐसा लगता है कि सामने वाला हमारी बात मानता नहीं है। अपने आप को बदलने से धीरे-धीरे परिवर्तन आएगा, दृष्टि बदलेगी और भविष्य में भी सकारात्मक परिवर्तन आएँगे। हमें केवल इस ओर ध्यान देना है कि हमने अपने जीवन में क्या प्रमाणित किया? हमें दूसरों के बारे में नहीं सोचना है। क्या मैंने अपने बालक को साधु, सैनिक या भगत सिंह बनने के लिए प्रेरित किया? हमें केवल इस पर ही ध्यान देना है। गीता परिवार में इस तरह के बाल संस्कार से सम्बन्धित बहुत से कार्यक्रम चल रहे हैं। आप उन कार्यक्रमों से जुड़कर अपनी सेवाएँ दीजिए और अपने जीवन को सफल कीजिए।

प्रश्नकर्ता- अनिकेत भैया
प्रश्न- मैंने साधना शिविर में स्वामी जी से सुना है कि गीता जी को पढ़ने से पहले अगर विदुर नीति को पढ़ेंगे तो बहुत अच्छा परिणाम रहेगा। विदुर नीति में लिखा है कि भाव की दृष्टि से धर्म के तीन रूप है: अधिभौतिक, अधिदैविक, आध्यात्मिक। इसके बारे में कृपया स्पष्ट कीजिए।
उत्तर- इसको एक उदाहरण से समझते हैं। गङ्गा जी का बहता हुआ जलधारा रूपी रूप जो आप देखते हैं, वह उनका अधिभौतिक रूप है और जहाँ गङ्गा जी की मूर्ति को आप देखते हैं और प्रणाम करते हैं, वह उनका अधिदैविक रूप है और गङ्गा जी में स्नान करने से हमारे पाप कटते हैं, गङ्गा जी हमारे पापों को हर लेती हैं- यह उनका आध्यात्मिक रूप है।

प्रश्नकर्ता- आशा पाण्डे दीदी
प्रश्न- हम सब यह जानते हैं कि आत्मा परमात्मा का रूप है पर हम उसे किस रूप में देखें, उसे किस तरह से समझें?
उत्तर- जिस तरह बल्ब में प्रकाश विद्युत के प्रवाह के कारण होता है और उसे देख पाना सम्भव नहीं है। इसी तरह हमारी आत्मा सूक्ष्म है, चेतन है। अपनी जड़ बुद्धि से उस चेतन को देख पाना या समझ पाना सम्भव नहीं है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||